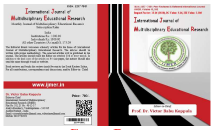
Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

भारतीय संस्कृत वाङ्मय में मानवाधिकार दर्शन: सामाजिक समता, स्वतंत्रता, न्याय एवं शिक्षा के अधिकार का अध्ययन

डॉ. चमन लाल
सह-आचार्य, शिक्षा विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

शोध-सारांश

मानवाधिकार आधुनिक लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक व्यवस्था की आधारभूत अवधारणाओं में से एक हैं। सामान्यतः मानवाधिकार-विमर्श का व्यवस्थित विकास आधुनिक पश्चिमी राजनीतिक एवं विधिक चिंतन से संबद्ध माना जाता है तथा 10 दिसंबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत सार्वभौम मानवाधिकार घोषणा को इसका महत्वपूर्ण मील का पत्थर माना जाता है। तथापि, भारतीय बौद्धिक परंपरा में मानव-मर्यादा, समानता, स्वतंत्रता, शिक्षा, धार्मिक सह-अस्तित्व, संपत्ति, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा लोककल्याण से संबंधित अनेक विचार प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का केंद्रीय उद्देश्य संस्कृत वाङ्मय में निहित मानवाधिकार-संबंधी अवधारणाओं का आधुनिक मानवाधिकार-विमर्श तथा भारतीय संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में विश्लेषण करना है। अध्ययन का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि भारतीय चिंतन में अधिकार और कर्तव्य को परस्पर विरोधी न मानकर परस्पर पूरक माना गया है। व्यक्ति का अधिकार दूसरे व्यक्ति या समाज के कर्तव्य से संबद्ध है और इसी प्रकार व्यक्ति का कर्तव्य दूसरे के अधिकार की रक्षा का आधार बनता है। इस दृष्टि से भारतीय परंपरा में अधिकारों की अवधारणा मुख्यतः नैतिकता, धर्म, कर्तव्य, समता, आत्मसंयम, सहयोग एवं लोककल्याण के व्यापक संदर्भ में विकसित होती है। शोध-पत्र में वैदिक साहित्य, उपनिषदों, भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, अर्थशास्त्र, कालिदासीय साहित्य तथा जैन दर्शन के प्रमुख सूत्रों के आधार पर समानता, स्वतंत्रता, शोषण-विरोध, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा, संपत्ति तथा सामूहिक सुख एवं सह-अस्तित्व की अवधारणाओं का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संस्कृत वाङ्मय को आधुनिक मानवाधिकारों का प्रत्यक्ष विधिक स्रोत कहना उचित नहीं होगा, किंतु उसमें ऐसे अनेक नैतिक एवं दार्शनिक मूल्य अवश्य मिलते हैं जो आधुनिक मानवाधिकारों के साथ वैचारिक साम्य स्थापित करते हैं।

संकेत शब्द*:* मानवाधिकार, संस्कृत वाङ्मय, कर्तव्य, समानता, स्वतंत्रता, शोषण-विरोध, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा, सामाजिक समरसता, लोककल्याण।

1. प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य की गरिमा, स्वतंत्रता, सुरक्षा और समानता से जुड़े प्रश्न निरंतर महत्वपूर्ण रहे हैं। जब किसी व्यक्ति या समूह द्वारा दूसरे व्यक्ति अथवा समूह के अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है, तब अधिकारों की सुरक्षा के लिए सामाजिक, राजनीतिक एवं विधिक प्रयासों का जन्म होता है। आधुनिक युग में मानवाधिकारों को एक सार्वभौमिक नैतिक एवं विधिक अवधारणा के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 1948 की मानवाअधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा ने मानव की अंतर्निहित गरिमा तथा समान एवं अविच्छिन्न अधिकारों को वैश्विक विमर्श के केंद्र में स्थापित किया। भारतीय संदर्भ में मानवाधिकार की अवधारणा को केवल आधुनिक विधिक व्यवस्था के माध्यम से समझना पर्याप्त नहीं है।

Cover Page
INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

भारतीय दर्शन और संस्कृत वाङ्मय में मनुष्य, समाज, प्रकृति तथा समस्त जीव-जगत के संबंधों को कर्तव्य, धर्म, ऋत, समता, सह-अस्तित्व और लोकसंग्रह के आधार पर समझने की दीर्घ परंपरा रही है। भारतीय चिंतन में अधिकार और कर्तव्य परस्पर संबद्ध हैं। एक व्यक्ति का कर्तव्य दूसरे व्यक्ति के अधिकार की रक्षा करता है। इसी कारण भारतीय जीवन-दृष्टि में केवल अधिकारों की मांग के स्थान पर कर्तव्यपरायणता को भी सामाजिक व्यवस्था का आवश्यक आधार माना गया है। मूल शोध-सामग्री में भी इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि "अधिकार एवं कर्तव्य अन्योन्याश्रित हैं" तथा परस्पर कर्तव्यपरायणता से सभी के अधिकार सुरक्षित रह सकते हैं। इस दृष्टि को भगवद्गीता के कर्म-सिद्धांत से भी जोड़ा जा सकता है। गीता में कहा गया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

यहाँ "अधिकार" की अवधारणा कर्म अथवा कर्तव्य के संदर्भ में प्रयुक्त हुई है। इसका आशय यह नहीं कि आधुनिक मानवाधिकारों की संपूर्ण अवधारणा गीता में उपलब्ध है, बल्कि यह कि भारतीय चिंतन में "अधिकार" और "कर्तव्य" का संबंध अत्यंत गहरा है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

- संस्कृत वाङ्मय में निहित मानवाधिकार संबंधी अवधारणाओं का अध्ययन करना।
- भारतीय चिंतन में अधिकार एवं कर्तव्य के पारस्परिक संबंध का विश्लेषण करना।
- समानता, समदृष्टि एवं स्वतंत्रता संबंधी वैदिक, उपनिषदिक एवं गीता के विचारों का अध्ययन करना।
- शोषण, सामाजिक असमानता तथा संपत्ति-संचय संबंधी विचारों का विश्लेषण करना।
- धार्मिक स्वतंत्रता, सहिष्णुता एवं विभिन्न मतों के सह-अस्तित्व का अध्ययन करना।
- शिक्षा, संपत्ति एवं उत्तराधिकार संबंधी अवधारणाओं का विश्लेषण करना।
- आधुनिक मानवाधिकारों और भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि के बीच साम्य एवं अंतर को स्पष्ट करना।

3. शोध-पद्धति

इस अध्ययन का स्वरूप मुख्य रूप से वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक है। इसमें संस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रंथों तथा आधुनिक मानवाधिकारों से जुड़े दस्तावेजों का अध्ययन किया गया है। वैदिक मंत्रों, उपनिषदों, भगवद्गीता, जैन दर्शन, कालिदास के साहित्य और अर्थशास्त्र में बताए गए मानव जीवन, समानता, स्वतंत्रता, न्याय और लोककल्याण से जुड़े विचारों को आधुनिक मानवाधिकारों के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। इसके माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में व्यक्त मानवीय मूल्यों का आधुनिक मानवाधिकारों से किस प्रकार संबंध स्थापित किया जा सकता है।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

4. संस्कृत वाङ्मय में मानवाधिकार की अवधारणा

संस्कृत वाङ्मय में 'मानवाधिकार' शब्द का प्रयोग आधुनिक संवैधानिक अर्थ में व्यवस्थित रूप से नहीं मिलता, तथापि मानव की गरिमा, जीवन, स्वतंत्रता, ज्ञान, सामाजिक सहयोग, न्याय, धार्मिक आचरण तथा संपत्ति से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण विचार विभिन्न संस्कृत ग्रंथों में विद्यमान हैं। भारतीय चिंतन परंपरा की विशिष्टता यह है कि व्यक्ति को समाज से पृथक एवं स्वतंत्र इकाई के रूप में न देखकर उसे परिवार, समाज, प्रकृति तथा समष्टि के साथ अंतर्संबंधित माना गया है। अतः भारतीय दृष्टि में मानव-कल्याण केवल व्यक्तिगत हित तक सीमित न रहकर सामूहिक एवं लोककल्याण की व्यापक अवधारणा से जुड़ता है।

5. समानता का अधिकार

आधुनिक मानवाधिकार-विमर्श में समानता एक मूलभूत सिद्धांत है। मानवाअधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद 1 में सभी मनुष्यों की जन्मजात स्वतंत्रता तथा गरिमा और अधिकारों में समानता की घोषणा की गई है। भारतीय परंपरा में समता का विचार अत्यंत प्राचीन है। ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र सामूहिक विचार, वाणी और हृदय की एकता का संदेश देता है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

समानो मन्त्रः समितिः समानी।

इस मंत्र में सामाजिक एकता, संवाद और सामूहिक चेतना की भावना दिखाई देती है। यह आधुनिक राजनीतिक समानता के समान विधिक अधिकार का प्रत्यक्ष विधान नहीं है, किंतु सामाजिक समरसता और सहभागिता का महत्वपूर्ण मूल्य प्रस्तुत करता है।

ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।

यह दृष्टि सभी प्राणियों में आत्मीयता एवं एकत्व की अनुभूति की ओर संकेत करती है।

भगवद्गीता में समदृष्टि का विचार और अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ *(भगवद्गीता, 5.18)*

यहाँ विद्वान की विशेषता विभिन्न सामाजिक एवं प्राणि-रूपों में समदृष्टि रखना बताई गई है। इसी प्रकार गीता में—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।

जैसी दृष्टि मनुष्य और समस्त जीवों के प्रति व्यापक समानता और आत्मीयता की दार्शनिक भूमि तैयार करती है।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

अतः संस्कृत वाङ्मय में समानता की अवधारणा को आधुनिक विधिक समानता से अलग रखते हुए समदृष्टि, आत्मीयता, सामाजिक समरसता और आध्यात्मिक एकत्व के रूप में समझा जा सकता है।

6. स्वतंत्रता का अधिकार

मानवाधिकारों में स्वतंत्रता अत्यंत महत्वपूर्ण है। आधुनिक मानवाधिकार घोषणा व्यक्ति को विचार, अभिव्यक्ति, आवागमन, निवास तथा अन्य व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं से संबंधित अधिकार प्रदान करती है। वैदिक साहित्य में स्वराज्य, स्वतंत्रता तथा पराधीनता से मुक्ति की आकांक्षा के विभिन्न संकेत मिलते हैं। वैदिक समाज में व्यक्ति एवं समुदाय के स्वतंत्र अस्तित्व की कामना अनेक प्रार्थनाओं में दिखाई देती है। भारतीय चिंतन में स्वतंत्रता केवल बाहरी राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है। आत्मसंयम और आत्मनिर्णय भी स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण आयाम हैं। उपनिषदिक चिंतन में आत्मज्ञान को परम स्वतंत्रता से जोड़ा गया है। गीता में भी व्यक्ति को अपने कर्म, विवेक और आत्मानुशासन के माध्यम से जीवन का मार्ग निर्धारित करने की प्रेरणा मिलती है।

7. शोषण के विरुद्ध अधिकार

आधुनिक मानवाधिकारों में व्यक्ति को शोषण, दासता तथा अमानवीय व्यवहार से संरक्षण प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान भी शोषण के विरुद्ध अधिकार को मौलिक अधिकारों में स्थान देता है।

संस्कृत वाङ्मय में शोषण-विरोधी विचारों को सामाजिक न्याय, संयम, दान, त्याग तथा संपत्ति के प्रति अनासक्ति के माध्यम से समझा जा सकता है।

ईशावास्योपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

इसका एक महत्वपूर्ण नैतिक संदेश अनियंत्रित लालसा का त्याग है। "मा गृधः" अर्थात् किसी अन्य के धन के प्रति लालसा न करना सामाजिक संपत्ति-न्याय और नैतिक संयम की दिशा में संकेत करता है।

भारतीय परंपरा में धन को पूर्णतः निषिद्ध नहीं माना गया, बल्कि उसके अर्जन एवं उपयोग को धर्म और सामाजिक उत्तरदायित्व से संबद्ध किया गया। इस दृष्टि से संपत्ति के अधिकार के साथ संपत्ति के नैतिक उपयोग का प्रश्न भी जुड़ता है।

भगवद्गीता में कर्म, लोभ, काम और आत्मसंयम से संबंधित विचार सामाजिक जीवन में संतुलन स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण हैं।

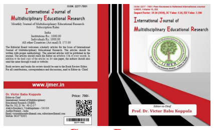

8. धार्मिक स्वतंत्रता

धार्मिक स्वतंत्रता आधुनिक लोकतांत्रिक समाज का महत्वपूर्ण अधिकार है। व्यक्ति को अपनी आस्था, धर्म या मत को स्वीकार करने, उसका पालन करने और उसके अनुरूप जीवन जीने की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की विशेषता विविध धार्मिक एवं दार्शनिक मतों का सह-अस्तित्व है। वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध, जैन, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत जैसी अनेक दार्शनिक धाराओं का विकास भारतीय भूमि पर हुआ। भारतीय धार्मिक दृष्टि में सत्य की खोज के विविध मार्गों को स्वीकार करने की परंपरा दिखाई देती है। इसी व्यापक दृष्टिकोण के कारण भारतीय संस्कृति में विभिन्न मतों और साधना-पद्धतियों के सह-अस्तित्व की संभावना बनी रही।

लोकप्रचलित समन्वयवादी स्तुति—

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

विभिन्न दार्शनिक परंपराओं के एक ही परम सत्य की ओर उन्मुख होने की समन्वयवादी भावना को अभिव्यक्त करता है। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि आधुनिक "धार्मिक स्वतंत्रता" एक संवैधानिक अधिकार है, जबकि प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका स्वरूप मुख्यतः धार्मिक सहिष्णुता, बहुलता और दार्शनिक संवाद के रूप में मिलता है।

9. शिक्षा का अधिकार

शिक्षा व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास का आधार है। आधुनिक मानवाधिकारों में शिक्षा को मानव विकास तथा गरिमापूर्ण जीवन का महत्वपूर्ण साधन माना गया है। भारतीय संस्कृति में शिक्षा का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक परंपरा में ज्ञान को व्यक्ति के जीवन-निर्माण का आधार माना गया। गायत्री मंत्र में बुद्धि के प्रकाश और सद्बुद्धि की कामना की गई है —

धियो यो नः प्रचोदयात्।

यह केवल सूचना-प्राप्ति नहीं, बल्कि विवेक और बुद्धि के विकास की आकांक्षा है। वैदिक शिक्षा-व्यवस्था में ब्रह्मचर्य, गुरु-शिष्य संबंध, अनुशासन, स्वाध्याय तथा चरित्र-निर्माण पर बल दिया गया। शिक्षा को केवल रोजगार का साधन न मानकर जीवन-मूल्यों के विकास से जोड़ा गया। अथर्ववेद में कन्या के ब्रह्मचर्य एवं शिक्षा से संबंधित संदर्भ भारतीय परंपरा में महिला-शिक्षा के विमर्श के लिए महत्वपूर्ण हैं। आधुनिक दृष्टि से इन स्रोतों की ऐतिहासिक व्याख्या करते समय उनके काल, सामाजिक संदर्भ और वास्तविक सामाजिक व्यवहार को ध्यान में रखना आवश्यक है।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में स्त्री एवं पुरुष दोनों की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने विभिन्न वर्गों के लिए उपयोगी ज्ञान एवं कौशल की शिक्षा को आवश्यक माना।

अतः भारतीय शिक्षा-दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में ज्ञान, विवेक, चरित्र, आत्मानुशासन और सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करना था।

10. संपत्ति का अधिकार

आधुनिक मानवाधिकार-विमर्श में संपत्ति का अधिकार व्यक्ति की आर्थिक स्वतंत्रता और सुरक्षा से जुड़ा हुआ है। भारतीय संविधान के मूल स्वरूप में संपत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार था, किंतु वर्तमान में यह संवैधानिक विधिक अधिकार के रूप में अनुच्छेद 300A के अंतर्गत संरक्षित है। प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में आधुनिक अर्थों में संपत्ति के सार्वभौमिक व्यक्तिगत अधिकार की अवधारणा स्पष्ट रूप से नहीं मिलती। तथापि संपत्ति, उत्तराधिकार, दान, परिवार एवं आर्थिक व्यवस्था से संबंधित अनेक संदर्भ उपलब्ध हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी के संवाद में संपत्ति-विभाजन का प्रसंग आता है। याज्ञवल्क्य संन्यास ग्रहण करने से पूर्व अपनी संपत्ति के संबंध में अपनी पत्नियों से संवाद करते हैं। यह प्रसंग परिवार, संपत्ति और उत्तराधिकार के प्रश्नों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी वंश, संतान और उत्तराधिकार से संबंधित संदर्भ प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में संपत्ति, उत्तराधिकार, ऋण, व्यापार और आर्थिक व्यवहार से संबंधित विस्तृत विधिक एवं प्रशासनिक विचार मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में संपत्ति का प्रश्न केवल व्यक्तिगत अधिकार तक सीमित नहीं था, बल्कि परिवार, राज्य, सामाजिक व्यवस्था और नैतिक उत्तरदायित्व से भी संबद्ध था।

11. सबके सुखी रहने का अधिकार

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य समष्टिगत कल्याण की भावना है। मानवाधिकारों को केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में देखने के स्थान पर भारतीय दृष्टि व्यक्ति और समाज के सामूहिक कल्याण पर भी बल देती है।

वैदिक साहित्य में सामूहिक जीवन के लिए अत्यंत सुंदर संदेश मिलता है—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

आगे कहा गया है—

समानो मन्त्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

इसमें सामूहिक विचार, सहयोग, संवाद और सामाजिक एकता का आदर्श प्रस्तुत होता है। भारतीय लोककल्याण की व्यापक भावना "सर्वे भवन्तु सुखिनः" जैसे सूत्रों में अभिव्यक्त होती है। इसका लक्ष्य केवल अपने सुख की प्राप्ति नहीं बल्कि व्यापक समाज के कल्याण की कामना है।

जैन दर्शन में आचार्य उमास्वाति का प्रसिद्ध सूत्र है—

परस्परोपग्रहो जीवानाम्।

अर्थात् जीव एक-दूसरे के उपकार एवं सहयोग से जुड़े हुए हैं। यह विचार आधुनिक सह-अस्तित्व, सामाजिक उत्तरदायित्व और पर्यावरणीय नैतिकता के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार भारतीय चिंतन में मानवाधिकार का आदर्श व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों के भीतर स्थापित होता है।

12. अधिकार और कर्तव्य का पारस्परिक संबंध

प्रस्तुत शोध-पत्र की केंद्रीय अवधारणा अधिकार और कर्तव्य की परस्पर पूरकता है। आधुनिक मानवाधिकार-विमर्श में अधिकारों पर विशेष बल दिया जाता है, जबकि भारतीय दर्शन में कर्तव्य को सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार माना गया है।

यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने अधिकार की मांग करे और अपने कर्तव्य की उपेक्षा करे, तो सामाजिक संघर्ष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करता है, तो दूसरों के अधिकारों की सुरक्षा स्वतः मजबूत होती है।

भगवद्गीता में—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

का संदेश व्यक्ति को अपने कर्म पर केंद्रित करता है। इसी प्रकार भारतीय धर्म-दर्शन में "धर्म" केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि व्यक्ति एवं समाज के प्रति उत्तरदायित्व का भी बोध कराता है।

कालिदास के *मेघदूत* में प्रयुक्त—

स्वाधिकारात् प्रमत्तः

पदबंध को भी संदर्भानुसार अपने दायित्व अथवा अधिकार-क्षेत्र से विचलन की ओर संकेत करने वाला माना जा सकता है। अतः भारतीय दृष्टि में अधिकारों की स्थायी सुरक्षा के लिए कर्तव्यपरायणता आवश्यक है। आधुनिक संवैधानिक व्यवस्था में भी मौलिक अधिकारों के साथ मौलिक कर्तव्यों की व्यवस्था इसी व्यापक संतुलन को अभिव्यक्त करती है।

13. आधुनिक मानवाधिकार विमर्श के लिए भारतीय दृष्टि की प्रासंगिकता

आज मानवाधिकारों के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं। सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता, धार्मिक असहिष्णुता, हिंसा, शोषण, पर्यावरणीय संकट और डिजिटल युग में निजता के प्रश्न मानवाधिकारों के स्वरूप को निरंतर जटिल बना रहे

Cover Page

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय चिंतन का अधिकार–कर्तव्य संतुलन महत्वपूर्ण हो सकता है। यदि अधिकारों को कर्तव्यों से अलग कर दिया जाए तो अधिकारों का प्रयोग स्वार्थपरक हो सकता है। इसके विपरीत कर्तव्य को अधिकारों से अलग कर देने पर व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा प्रभावित हो सकती है। भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी दृष्टिकोण भी विविधता में एकता की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण है। विभिन्न मतों, भाषाओं, संस्कृतियों और जीवन-पद्धतियों के प्रति सम्मान मानवाधिकारों की सामाजिक आधारभूमि को मजबूत कर सकता है।

15. निष्कर्ष

संस्कृत वाङ्मय में आधुनिक अर्थों में "मानवाधिकार" की कोई एकीकृत एवं विधिक संहिता उपलब्ध नहीं है। तथापि मानव-मर्यादा, समता, स्वतंत्रता, ज्ञान, धार्मिक बहुलता, संपत्ति, सामाजिक उत्तरदायित्व, सहयोग एवं लोककल्याण से संबंधित अनेक मूल्य संस्कृत साहित्य में विभिन्न रूपों में विद्यमान हैं। वैदिक साहित्य में सामूहिकता और समता की भावना, उपनिषदों में समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता, भगवद्गीता में समदृष्टि और कर्तव्य, ईशावास्योपनिषद् में लोभ-निरोध, जैन दर्शन में पारस्परिक सहयोग तथा कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था से संबंधित विचार इस व्यापक परंपरा के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करते हैं। इस अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि भारतीय परंपरा में अधिकार को कर्तव्य से अलग करके नहीं देखा गया। व्यक्ति का कर्तव्य दूसरे के अधिकार की सुरक्षा का माध्यम बनता है और दूसरे के अधिकार का सम्मान स्वयं व्यक्ति के नैतिक कर्तव्य का हिस्सा है। इसलिए संस्कृत वाङ्मय को आधुनिक मानवाधिकारों का प्रत्यक्ष संवैधानिक स्रोत मानना ऐतिहासिक रूप से उचित नहीं होगा; किंतु इसे मानव-मर्यादा, समता, आत्मसंयम, सामाजिक समरसता, धार्मिक सह-अस्तित्व और लोककल्याण जैसे मूल्यों की एक महत्वपूर्ण दार्शनिक परंपरा के रूप में देखा जा सकता है। आज जब मानवाधिकारों की चर्चा प्रायः व्यक्तिगत अधिकारों के संदर्भ में होती है, तब भारतीय "कर्तव्य-आधारित अधिकार-दृष्टि" एक महत्वपूर्ण वैचारिक पूरक प्रस्तुत करती है। अधिकारों की वास्तविक सुरक्षा तभी संभव है जब व्यक्ति अपने अधिकारों के साथ दूसरों के अधिकारों के प्रति भी उत्तरदायी हो। इसी संतुलन के माध्यम से स्वतंत्रता, समानता, न्याय और सामाजिक समरसता पर आधारित समाज का निर्माण संभव है।

संदर्भ

1. भारत सरकार. (2024). *भारत का संविधान*. विधि और न्याय मंत्रालय।
2. कालिदास. (2018). *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। (मूल रचना प्राचीन)
3. कालिदास. (2019). *मेघदूतम्*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। (मूल रचना प्राचीन)
4. कौटिल्य. (2016). *अर्थशास्त्र* (आर. शमाशास्त्री, अनुवादक). चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। (मूल रचना प्राचीन)
5. मनु. (2016). *मनुस्मृति*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। (मूल रचना प्राचीन)
6. महर्षि वाल्मीकि. (2018). *वाल्मीकीय रामायण*. गीता प्रेस। (मूल रचना प्राचीन)
7. महर्षि वेदव्यास. (2019). *महाभारत*. गीता प्रेस। (मूल रचना प्राचीन)
8. महर्षि वेदव्यास. (2020). *श्रीमद्भगवद्गीता*. गीता प्रेस। (मूल रचना प्राचीन)
9. उमास्वाति. (2017). *तत्त्वार्थसूत्र*. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान। (मूल रचना प्राचीन)

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY EDUCATIONAL RESEARCH
ISSN:2277-7881(Print); IMPACT FACTOR :10.16(2026); IC VALUE:5.16; ISI VALUE:2.286
Peer-Peer Reviewed, Refereed & Open Access International Journal - As per UGC Norms
(Fulfilled Suggests Parameters of UGC by IJMER)
Volume:15, Issue:8(3), August 2026
Scopus Review ID: A2B96D3ACF3FEA2A
Article Received: Reviewed: Accepted
Publisher: Sucharitha Publication, India
Online Copy of Article Publication Available: www.ijmer.in

Cover Page

10. संयुक्त राष्ट्र. (1948). *मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा.* संयुक्त राष्ट्र।
11. संयुक्त राष्ट्र (1948) *मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा।* संयुक्त राष्ट्र।
12. संयुक्त राष्ट्र (1966) *नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध।* संयुक्त राष्ट्र।
13. संयुक्त राष्ट्र (1966) *आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध।* संयुक्त राष्ट्र।
14. स्वामी दयानन्द सरस्वती (2018). *सत्यार्थ प्रकाश.* आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट।